International Journal of Applied Research 2020; 6(11): 457-460

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(11): 457-460
www.allresearchjournal.com
Received: 11-10-2020
Accepted: 15-11-2020

डा0 सुमन शर्मा
वरिष्ठ प्रवक्ता, इन्स्टीट्यूट ऑफ टीचर एजूकेशन, कादराबाद, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डा0 सुमन शर्मा
वरिष्ठ प्रवक्ता, इन्स्टीट्यूट ऑफ टीचर एजूकेशन, कादराबाद, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सन्दर्भ में उच्च शिक्षा पाठ्य क्रम में सुधारः कुछ सकारात्मक सुझाव

डा0 सुमन शर्मा

प्रस्तावनाः

आज पूरे विश्व में उच्च शिक्षा के प्रति आकर्षण है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपना सामाजिक आर्थिक स्तर ऊँचा करें। आज भारत में उच्च शिक्षा सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक उन्नति का सोपान बनी है। उच्च शिक्षा राष्ट्रीय चेतना, सत्य की खोज, समानता, सांस्कृति सामजस्य एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने एवं निर्भरता और चिन्तन प्रवृत्ति में वृद्धि करती है। इसमें कोई शक नहीं कि उच्च शिक्षा ने स्वतन्त्रा भारत में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीति लोकतन्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने ज्ञान वान समाज की रचना के लिए प्रवेश द्वार उपलबध कराया है किन्तु सिर्फ इसकी खूबियों पर ध्यान देना बहुत बड़ी भूल होगी। इसमें कुछ कमियाँ भी हैं, जो गंभीर चिंता पैदा करती है। रक्षा की उच्च गुणवत्ता बनाए रखने के लिए शैक्षिक गतिविधियों का संचालन आवश्यक है। परन्तु दुःख, है कि कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को छोड़कर शिक्षा के विशिष्ट एवं समस्त परिवेश में चौंका देने वाली गिरावट आई है।

प्रसिद्ध (हिन्दी कवि जयशंकर प्रसाद ने ''कामायनी'' लिखा है–

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।''

थॉमस के शब्दों में, ''ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति अतीत काल से इतना प्रेम हो, या जहाँ ज्ञान का इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव हो। वैदिक काल में सारे कवियों से लेकर, आजकल के बंगाली दार्शनिक तक शिक्षकों और विद्ववानों को एक अटूट क्रम भारत में मिलता है।''

प्रत्येक देश की शिक्षा उसकी कुछ सामाजिक–आर्थिक तथा राजनैतिक माँगों को पूरा करती है तथा दूसरी ओर वह स्वयं बालक के व्यक्तिगत विकास में सहायक होती है–बालक का बौधिक व भावात्मक तथा भौतिक विकास करती है। इस प्रकार व्यक्ति तथा समाज प्रत्येक देश की शिक्षा–धारा के दो किनारे हैं जिनके बीच वह सदैव बहती है। दोनों के बीच से होकर बहती हुई वह व्यक्ति तथा समाज दोनों का ही उन्नयन उसका उद्देश्य है। व्यक्ति में समाज की परम्पराओं, प्रक्रियाओं तथा माँगों के अनुकूल परिवर्तन लाना ही उसका उद्देश्य है। एक जनतंत्रात्मक देश में शिक्षा का यही कार्य, यही ध्येय होना चाहिये। जो शिक्षा इससे विमुख है वह वांछनीय नहीं है। हमारे देश में ब्रिटिश कालीन शिक्षा प्रणाली इन उद्देश्यों से विमुख हो गई तथा कहीं दोनों कगारों को तोड़कर बाहर बहने लगी थी।

कोई भी राष्ट्र अपनी ज्ञान की पूँजी कैसे बनाता है और उसका कैसे उपयोग करता है उसके आधार पर यह तय होता है कि वह मानवीय क्षमताओं को बढ़ाने में अपने नागरिकों को सशक्त और समर्थ बनाने में कितना सक्षम है। अगले कुछ दशकों में दुनिया में युवाओं की सबसे बड़ी आबादी भारत में होगी। विकास की ज्ञान आधारित रणनीति अपनाने से इस युवा उर्जा का लाभ उठाने में मद्द मिलेगी। नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रसिद्ध (अर्थशास्त्री श्री अमर्त्य सेन ने 14 नवम्बर, 1999 को दिल्ली में आयोजित एक सम्मेलन में बताया कि, ''भारत में उच्च शिक्षा संक्रमण काल से गुजर रही हैं जो साधनों की कमी से नहीं वरन स्तर की दृष्टि से गुणवत्ता में गिरावट है।

उच्च शिक्षा का यह गिरता स्तर उससे सम्बन्धित अधिकारी कुलाधिपति, कुलपति, नीति निर्धारण करने वाले शिक्षा विदों और मुख्यतः उच्च शिक्षा के प्रत्यक्षः जिम्मेदार अध्यापक कार्य में लगे सभी प्राध्यापकों के लिए चिन्ता का विषय है।''

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्वः–

भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था के सामने गंभीर चुनौतियाँ हैं। इसमें बदलाव की जरूरत है ताकि हम शिक्षा का स्तर गिराए बिना कहीं बड़ी संख्या में युवाओं को शिक्षित कर सकें। ऐसा करना आवश्यक है क्योंकि 21वीं शताब्दी में अर्थव्यवस्था और समाज में बदलाव काफी हद तक हमारी जनता के बीच शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा में प्रसार और उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करेगा। उच्च शिक्षा के लिए अवसरों का बड़े पैमाने पर विस्तार करना होगा।

अध्यय के उद्देश्यः–

1. बदलती राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में राजनीति, प्रशासन व्यवस्था, उद्योग एवं वाणिज्य में स्वस्थ प्रतिनिधित्व करना।
2. दूरदर्शी, बुद्धिमान और साहसी नेताओं के निर्माण के द्वारा समाज सुधार पर बल देना।
3. व्यक्तियों के जन्मजात गुणों की खोज करना एवं प्रशिक्षण के माध्यम से उनका विकास करना।
4. अध्यापक तथा छात्रों में मनोवृति तथा मूल्यों का पोषण करना।
5. राष्ट्रीय अनुशासन, अन्तराष्ट्रीय अवबोध आध्यात्मिक, विकास, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे की भावना का निर्माण करना।
6. उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में उचित संशोधन कर उपयोगी बनाना।
7. विश्वविद्यालय के संगठन और प्रशासन में सुधार करना।
8. उच्च शिक्षा और अनुसन्धान में गुण और स्तर की दृष्टि से आमूल सुधार करना।

इसी विशाल कार्य को ध्यान में रखते हुए 13 जून, 2005 को 2 अक्टूबर, 2005 से 2 अक्टूबर 2008 तक तीन वर्ष के कार्यकाल के लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन किया गया। भारत के प्रधानमंत्री की उच्चस्तरीय सलाहकार संस्था के रूप में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग को नीतिगत मार्गदर्शन तथा सुधारों के निर्देशन का अधिकार सौंपा गया है। उसे शिक्षा, विज्ञान और टैक्नोलॉजी, कृषि, उद्योग, ई–प्रशासन जैसे प्रमुख क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है। ज्ञान की सहज सुलभता, ज्ञान प्रणालियों की रचना और संरक्षण, ज्ञान का प्रसार और बेहतर ज्ञान सेवाओं का विकास आयोग के मुख्य सरोकार है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग में अध्यक्ष सहित छह सदस्य हैं सभी सदस्य अंशकालिकन रूप में बिना वेतन काम करेगें। सदस्यों के काम में उनकी मदद के लिए थोड़े से तकनीकी कर्मचारी हैं, जिनका नेतृत्व सरकार द्वारा राष्ट्रीय ज्ञान आयोग में प्रतिनियुक्ति कार्यकारी निदेशक करते हैं। नियोजन और बजट के साथ–साथ संसद संबध प्रतिक्रियाओं को संभालने के लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की नोडल, केन्द्रीयवद्ध एजेंसी योजना आयोग को बनाया गया है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की कार्य विधिः–

1. ध्यान देने के मुख्य क्षेत्रों की पहचान करना।
2. विविध हितधारकों की पहचान और क्षेत्रों के मुख्य विषयों की समक्ष करना।
3. कार्यदलों का गठन और कार्यशालाओं/गोष्ठियों का आयोजन, सब ईकाइयों और हितधारकों के साथ विस्तृत औपचारिक और अनौपचारिक विचार–विमर्श करना।
4. प्रशासनिक मंत्रालयों तथा योजना आयोग के साथ विचार–विमर्श करना।
5. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के अध्यक्ष की ओर से प्रधानमंत्री के नाम पत्रों में भेजे जाने वाली सिफारिशें तय करने पर राष्ट्रीय ज्ञान आयोग में चर्चा करना।
6. प्रधानमंत्री के नाम पत्र, जिसमें मुख्य सिफारिशें, शुरूआती उपायों, वित्तीय जरूरतों आदि के वर्णन के साथ सब विस्तृत दस्तावेज तेयार करना।
7. सिफारिशों को राज्य सरकारों, समाज और अन्य हितधारकों तक पहुँचाना।
8. प्रधानमंत्री कार्यालय के तत्वाधन में सिफारिशों पर अमल शुरू करना।
9. हितधरकों की राय के आधार पर सिफारिशें तय करना और प्रस्तावों में तालमेल तथा उनके अमल पर नजर रखना।

उच्च शिक्षा ने स्वतंत्रा भारत के आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीति लोकतंत्र को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान किया है। लेकिन इस समय चिंता का एक गंभीर कारण है। उच्च शिक्षा में प्रवेश करने वाले आयु वर्ग का हमारी जनसंख्या में अनुपात लगभग 7 प्रतिशत है। विश्वविद्यालयों में स्थानों की संख्या की दृष्टि से उच्च शिक्षा पाने के अवसर हमारी आवश्यकताओं के हिसाब से बिलकुल पर्याप्त नहीं है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का मानना है कि हमारी स्कूल व्यवस्था का विस्तार करना और उसमें सुधार करना बेहद जरूरी है ताकि हर बच्चे को उच्च शिक्षा की दुनिया में कदम रखने के बराबर अवसर मिल सकें।

विश्वविद्यालय–

विश्वविद्यालयों का लचीला अभिनव और रचनात्मक होना आवश्यक है। विश्वविद्यालयों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वे शिक्षक या विद्यार्थी दोनों में ही सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित करें। उनमें स्पर्धा करने की क्षमता और उत्कृष्टता प्राप्त करने ही प्रेरणा होनी चाहिए। हम अपने मौजूदा विश्वविद्यालयों में सुधार किए बिना अपनी उच्च शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की कल्पना भी नहीं कर सकते।

अतः भारत में विश्वविद्यालयों की स्थिति के बारे में गंभीर चिंता होना स्वाभाविक है। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की भर्ती के लिए स्थान आवश्यकता से बहुत कम है। अधिकतर विश्वविद्यालयों में शिक्षा का स्तर अपेक्षा से बहुत नीचे है। हमारे विश्वविद्यालयों और बाहरी दुनिया के विश्वविद्यालयों के बीच अंतर बढ़ गया है। हमारे कुछ विश्वविद्यालय विश्व के सर्वोत्तम अर्थात उच्चतम पचास के अन्तर्गत आते हैं। अगर हम अपने विश्वविद्यालयों की कमियों को समझना न चाहें तो भी उनके लक्षण साफ दिखाई दे रहें हैं। किन्तु निम्नलिखित समस्याएँ इतनी आम है कि उन पर चिंता होना स्वाभाविक है। सबसे पहले बात करें पाठ्यक्रम की तो उसमें दशकों से कोई बदलाव नहीं हुआ है, ज्ञान की बढ़ती सीमाओं की तो बात ही क्या है वह समय के साथ भी नहीं बदला है। दूसरे विद्यार्थियों के ज्ञान मूल्याँकन की व्यवस्था में समझ की बजाय याद्दाश्त को महत्व दिया जाता है, इसलिए सीखेन और सृजनात्मक क्षमताएँ कमजोर है। तीसरी महत्वपूर्ण समस्या माहौल की है, जो कक्षा से बाहर कुछ सीखेन को बढ़ावा नहीं देता।

आज भी विश्वविद्यालय सुबह 09:30 से दोपहर 01:30 के दायरे में बंधे हुऐ है। चौथी समस्या यह है कि कक्षाओं या परीक्षाओं के लिए कोई निश्चित कैलेंडर नहीं हैं। कभी–कभी तो निर्धारित कार्यक्रम इतनी बुरी तरह छिन्न–भिन्न हो जाता है कि कई स्थानों पर समय सारिणी में दी गई कक्षाएँ होती ही नहीं और परीक्षा के परिणाम 6 से 12 महीने बाद आते हैं। पांचवी समस्या यह है कि बुनियादी सुविधाऐं न सिर्फ नाकाफी है, बल्कि ढ़हने के

कगार पर है। छठी समस्या यह है कि विभिन्न विषयों के बीच की सीमाऐं सीमाएँ देसी दीवार बन गई है, जो नए विषयों के बीच की सीमाएँ ऐसी दीवार बन गई है, जो नए विषयों या नए पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश में रूकावट डालती है, जबकि ज्ञान का सबसे तेजी से विकास विषयों की संधि पर हो रहा है। सातवीं समस्या यह है कि अनुसंधान को दिया जाने वाला महत्व धीरे–धीरे घटता जा रहा है। आठवीं समस्या यह है कि अनुसंधान की मात्रा वैसी नहीं रही, जैसी पहले हुआ करती थी। जिसकी झलक उसकी सामग्री की बारम्बारता और प्रकाशन के स्थान की कोटि में मिलती है कि शोध की क्वालिटी पहले जैसी नहीं रही। नौवीं समस्या यह है कि अधिकतर सार्वजनिक संस्थाओं में जवाबदेही न के बराबर है, क्योंकि अच्छे कार्य निष्पादन के लिए कोई ईमान नहीं मिलता और काम न करने पर कोई सजा भी नहीं मिलती। दसवीं समस्या यह है कि 50 वर्ष पहले प्रशासन का जो ढाँचा बनाया गया है, वह बदलते वक्त पर परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है, बल्कि निहीत स्वार्थ व्यवस्था का मजाक बना देते हैं।

इस बात का पूरा निदान कर पाना काफी, मुश्किल है कि हमारे विश्वविद्यालयों की मुख्य समस्या क्या हैघ हमारे विश्वविद्यालयों की हालत सुधारने के उपायों का सुझाव देना यदि नामुमकिन नहीं, तो मुश्किल जरूर है। फिर भी हमें विश्वास है कि हमने जो रास्ते सुझाए हैं, उनके अनुसार निम्नलिखित क्षेत्रों में सुधार कर पाना न सिर्फ संभव हे, बल्कि उससे स्थिति में बदलाव भी होगा।

संख्या और आकारः–

भारत में करीब 350 विश्वविद्यालय है। यह संख्या न तो उच्च शिक्षा की हमारी जरूरतों के हिसाब से पर्याप्त है और न ही चीन की तुलना में पर्याप्त है। चीन से पहले तीन वर्ष में 1250 नए विश्वविद्यालय खोलने की अनुमति दी है। हमारे कुछ विश्वविद्यालयों का आकार इतना बड़ा है कि उनमें शिक्षा के स्तर पर निगरानी रखना और सु–प्रशासन देना नामुमकिन है। इसका निष्कर्ष सिर्फ यही नहीं है कि हमें 2015 तक देश भर में करीब 1500 विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है बल्कि हमें छोटे विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है, जिनमें बदलाव आसान हो और जिनका प्रबंध भी आसानी से किया जा सकें।

पाठ्यक्रमः–

विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रमों की विषय–वस्तु कई दशकों से नहीं बदली है। उसमें लगातार समय–समय पर सुधार और संशोधन आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को तीन वर्ष से कम से कम एक बार अपने पाठ्यक्रम में संशोधन या फेर–बदल करना चाहिए। इस संशोधनों को अपनाने से पहले दूसरे विश्वविद्यालयों से इनकी समीक्षा कराई जानी चाहिए। इस तरह के संशोधन की प्रक्रिया चुस्त और विकेन्द्रित होनी चाहिए, शिक्षकों को अधिक स्वायत्ता मिलनी चाहिए, और इसके लिए जहाँ कहीं आवश्यक हो विधान में बदलाव किया जाना चाहिए। मौजूदा व्यवस्थाऐं समय पर या तेजी से पाठ्यक्रम में संशोधन में बड़ी रूकावट बन जाती हैं जो विभाग या विश्वविद्यालय नियमित रूप से पाठ्यक्रमों में सुधार नहीं करते, उनके लिए दंड की कोई व्यवस्था होनी चाहिए।

परीक्षा व्यवस्था में आंकलन सुधार करना बहुत जरूरी है ताकि यह विद्यार्थियों की याददाश्त के बजाय उनकी समझ की परीक्षा ले। विश्लेषण की क्षमताओं और रचनात्मक सोच को महत्व दिया जाना चाहिए। रटन्त विद्या को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए। विकेन्द्रित परीक्षा व्यवस्था और छोटे विश्वविद्यालयों में ऐसे सुधार कर पाना अधिक व्यवहारिक होता है, किन्तु विद्यार्थियों की प्रतिभा और क्षमता का आंकलन सिफ परीक्षाओं के आधार पर नहीं होना चाहिए। लगातार भीतरी आंकलन चलते रहना चाहिए, जो शिक्षकों और सिखाने–सीखने की प्रक्रिया में नई जान डालता है। इस तरह भीतरी आंकलन की व्यवस्था को विद्यार्थियो में विश्लेषक और रचनात्मक क्षमताओं को भी बढावा मिलता है, जो विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित की जाने वाली वार्षिक परीक्षाओं में घुटकर रह जाती है।

पाठ्यक्रम क्रेडिटः–

मौजूदा व्यवस्था बहुत कठोर है और इसमें विद्यार्थियों के लिए विकल्प बहुत कम है। जो विश्वविद्यालय छोटे हैं या सेमिस्टर व्यवस्था अपनाते है, उनमें लचक अधिक होती है। बड़े विश्वविद्यालयों में भी पाठ्यक्रमों के ढ़ाँचों में अधिक विविधता और अधिक लचीलापन लाना आवश्यक है। यह पाठ्यक्रम क्रेडिट व्यवस्था अपनाने की दिशा में पाठ्यक्रमों में आवश्यक संख्या में क्रेडिट पाने के आधार पर दी जाती है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपने चुने हुए विषय में न्यूनतम संख्या में क्रेडिट पाना अनिवार्य होना चाहिए। किन्तु बाकी क्रेडिट अन्य विषयों में पाने की छूट होनी चाहिए। विद्यार्थियों को बंधक बनाने की बजाय छूट देना जरूरी हैं।

अनुसंधानः–

शिक्षण और शोध दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और दोनों एक दूसरे को समृद्ध बनाते है। शोध और अनुसंधान का प्राकृतिक स्थान विश्वविद्यालय ही होता है। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालयों में शैक्षिक उत्कृष्टता पाने के लिए अनुसंधान और शोध कार्य जरूरी है। इसके लिए संसाधनों के आवंटन, पुरस्कार व्यवस्था और सोच में बदलाव करना होगा। शोध और अनुसंधान के लिए काफी मात्रा में अनुदान आवंटित करना आवश्यक है।

शिक्षकः–

प्रतिभावान शिक्षकों को आकर्षित करने और उन्हें विशविद्यिालयों में रोके रखने के लिए ठोस प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसा करना आवश्यक हैं, क्योंकि कल शिक्षक बनने वाले प्रतिभावन विद्यार्थियों के सामने भारत में दूसरे पेशों और भारत से बाहर शिक्षा के पैशें में कहीं अधिक आकर्षक विकल्प उपलब्ध हैं। उन्हें कार्यालय के स्थान और शोध के लिए आवश्यक सुविधाओं और आवास के रूप में काम की उपयुक्त परिस्थितियाँ उपलबध कराना आवश्यक है। किन्तु हो सकता है कि इतना काफी न हो। इसके साथ ही साथ कार्य निष्पादन के लिए कुछ प्रोत्साहन और पुरस्कार की व्यवस्था भी करनी होगी।

धन की व्यवस्थाः–

आमतौर पर रख–रखाव का 75 प्रतिशत हिस्सा वेतन और पेंशन पर खर्च हो जाता है। बाकी 25 प्रतिशत से कम से कम 15 प्रतिशत किराए, बिजली और टेलीफोन के बिलों और परीक्षाओं के आयोजन पर खर्च हो जाता है। बची–कुची 10 प्रतिशत से भी कम रकम विकास तो क्या रख–रखाव के लिए भी पूरी नहीं पड़ती। प्रयोगशालाऐं और पुस्तकालय संकट में रहते हैं और इमारतें ढहती रहती हैं। अब समय आ गया है कि विश्वविद्यालयों के लिए बजट नए सिरे से निर्धारित करने के बारे में ध्यान से सोचा जाए। संसाधन आंवटन के नियमों के अन्तर्गत वेतन/पेंशन के लिए प्रावधान और रख–रखाव/विकास /निवेदन के लिए प्रावधन के बीच बेहतर संतुलन रखा जाना चाहिए।

बुनियादी सुविधाऐंः–

बुनियादी सुविधाओं में खेल, सुविधाओं और सभागारों तथा कक्षा के कमरों के अलावा प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों पर विशेष ध्यान देना होगा। यह जरूरी है कि विश्वविद्यालय अपने परिसर में सभी विद्यार्थियों और शिक्षकों को ब्रॉडबैंउ कनेक्टिविटी की सुविधा प्रदान करें। इसके समानान्तर दाखिलों, प्रशासन और परीक्षाओं के लिए सूचना टैक्नॉलॉजी प्रणालियों और कैम्पस

समुदायों के लिए अन्य उपयोगी वेब सेवाओं का इस्तेमाल भी किया जाना चाहिए।

प्रशासनः–

विश्वविद्यालयों कें प्रशासन के ढाँचे में सुधार करना तत्काल आवश्यक है। मौजूदा व्यवस्था में कई कमियाँ है। एक तरफ स्वायत्ता की रक्षा नहीं करता और दूसरी तरफ जवाबदेही को भी बढ़ावा नहीं देता। सरकारों के हस्तक्षेप और राजनीतिक प्रक्रिया की दखलंदाजी के कारण विश्वविद्यालयों की स्वायत्ता घट गई है। सबसे पहले तो कुलपतियों की नियुक्ति खोज प्रक्रिया और सिर्फ साथियों के निर्णय पर आधरित होनी चाहिए। नियुक्ति हो जाने के बाद कुलपतियों का कार्यकाल छह वर्ष का होना चाहिए, क्योंकि अधिकांश विश्वविद्यालयों में तीन वर्ष और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में पांच वर्ष का मौजूदा कार्यकाल पर्याप्त नहीं है। दूसरे यूनिवर्सिटी कोट्र्स विद्वत् परिषदों और कार्यकारी परिषदों के कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया धीमी होती है और कभी वे परिवर्तन में बाधक हो जाती है। ऐसी स्थिति में कुलपति को मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में काम करना चाहिए जो कार्यकारी परिषद की सलाह और सहमति से प्रशासन चला सकें और जिसके पास इसका पूरा अधिकार हो। तीसरे अब तक के अनुभवों से पता चलता है कि दबे पांव राजनीति के दखल ने विश्वविद्यालयों का प्रबंध चलाना बेहद मुश्किल कर दिया है और बाहर से गैर–शैक्षिक दखलदांजी ज्यादा होने लगी है। इस समस्याओं को समझ कर न सिर्फ विश्वविद्यालय के भीतर बल्कि बाहर भी खासकर सरकारों, संसद और विधनमंडलों और राजनीतिक दलों में व्यस्थित ढंग से सुलझाया जाना चाहिए।

निष्कर्षः–

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों पर अमल के लिए तीन विभिन्न स्तरों पर कार्यवाही करनी होगी। मौजूदा व्यवस्थाओं के भीतर सुधार नीतियों में बदलाव और मौजूदा कानूनों या विधानों में संशोधन या नए कानून बनाना। प्रस्तावित परिवर्तनों को भी तीन अलग–अलग स्तरों पर लागू करना होगा। विश्वविद्यालय, राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि भारत में उच्च शिक्षा के मामले में संकट बहुत गहरा है। अब इस संकट से व्यवस्थित ढंग से और सीधे ही दो–दो हाथ करने का समय आ गया है। यह सही है कि सुधार और बदलाव की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। अभी बहुत कुछ करना बाकी है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग अगले कदमों पर विचार करता रहेगा, लेकिन उसका कहना है कि स्थिति पर तत्काल ध्यान देना जरूरी है, क्योंकि भारत का भविष्य इस पर निर्भर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. डा0 सीतराराम जायसवाल, शिक्षा में निर्देशन व परम्परा।
2. डा0 एस0 श्रीवास्तव, 2003, भारत में शिक्षा का विकास, आगरा प्रकाशन।
3. सुरेश भटनागर, 2005, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. विद्या मेघ, शैक्षिक उन्नयन का मासिक मार्गदर्शक, अगस्त 2010
5. विद्या मेघ, शैक्षिक उन्नयन का मासिक मार्गदर्शक, सितम्बर 2010